आमुख कथा

परिस्थिति नहीं—मन:स्थिति का रूपांतरण

जल में कमल बनो

'साधो शब्द साधना कीजै।'

सबसे पहले 'साधु' शब्द को समझें। कबीर के सारे वचन संबोधित हैं; लिखे नहीं गये हैं, बोले गये हैं; किसी से कहे गये हैं; किसी के संदर्भ में हैं। अंधेरे में किसी भी दिशा में तीर नहीं चला दिया है। कोई सामने है, इसको ध्यान में रखकर ही कहे गये हैं।

कबीर के वचनों में संवाद है। कबीर के वचनों में संदर्भ है।

तो कोई वचन शुरू होता है 'साधु से। कोई वचन शुरू होता है 'संत' से; कोई वचन शुरू होता है—पंडित-पांडे से; कोई वचन शुरू होता है—मुल्ला-काजी से। कोई वचन शुरू होता है—अवधू-अवधूत से। और कोई वचन शुरू होता है—कबीरा से; कबीर स्वयं को संबोधित करते हैं—कबीरा।

ये सारे संबोधन समझने जैसे हैं।

पंडित-पांडे के तो कबीर मूल विरोधी हैं। इसलिए जहां उन्होंने पंडित-पांडे का संबोधन किया है, वहां वे खंडन को तत्पर हैं। वहां वे तलवार लेकर खड़े हैं। वहां उनके वचनों में अंगार है, क्रांति है, विध्वंस है। क्योंकि कबीर कहते हैं : शास्त्र को जानने से सत्य नहीं जाना जाता। हां, कोई सत्य को जान ले, तो शास्त्र जरूर जान लिया जाता है।

कितना ही पढ़ो, कितना ही लिखो, कुछ भी हाथ न आएगा। स्याही से कितने ही हाथ काले करो, कहीं पहुंचोगे नहीं। खोपड़ी भर जाएगी। शब्दों ही शब्दों से खोपड़ी भर जाएगी। और उन्हीं शब्दों की भीड़ के कारण, जो मूल शब्द है, वह सुनाई न पड़ेगा। इस विरोधाभास को ख्याल में लेना।

मूल शब्द तभी सुनाई पड़ता है, जब तुम्हारे शब्द खो जाते हैं। जब तुम नि:शब्द हो जाते हो, तब सुनाई पड़ता है। यह विरोधाभास लगेगा। नि:शब्द में शब्द सुनाई पड़ता है।

शब्द से अर्थ : परमात्मा का स्वर, अस्तित्व का स्वर—यह जो समग्र के प्राण का आंदोलन है—यह। लेकिन अगर हम अपने ही शब्दों से भरे हैं और बड़ी भीड़ मची है वहां, और बड़ी कीचड़ मची है वहां—शब्द और सिद्धांतों की, तो कौन सुनेगा? कैसे सुनेगा? उस शोरगुल में परमात्मा की धीमी-सी वाणी खो जाती है।

वह जो धीमा-सा वीणा का स्वर भीतर बज रहा है, वह सुनाई पड़े, तो कैसे सुनाई पड़े? यह जो नकारखाना है, जिसमें हमने जमाने भर के उपद्रव इकट्ठे कर रखे हैं, यह जो हमारा मन है, इसमें शास्त्र है, सिद्धान्त हैं, वाद-विवाद है, राजनीति है, धर्म है, और न मालूम क्या-क्या है! यह जो कूड़ा-कर्कट हमने इकट्ठा किया है, इसी कूड़े-कर्कट में हीरा दब गया है।

तो जब भी कबीर पंडित को संबोधन करते हैं, तब समझ लेना कि वे तत्पर हैं मिटाने को।

मिटाना जरूरी है—बनाने के लिए। विध्वंस जरूरी है—निर्माण के लिए। पुराने मकान को गिराना पड़ता है, तो नया बनाया जा सकता है। पुरानी देह जल जाती है, तो नया जन्म मिलता है।

तो जैसे ही पंडित-पांडे का संबोधन आए, समझ जाना कि कबीर खड़ग लेकर खड़े हैं।

और इसी तरह मुल्ला और काजी।

जहां कबीर 'अवधू' या 'अवधूत' को संबोधित करते हैं, वहां सम्मान से करते हैं। यद्यपि कबीर स्वयं अवधूतों से राजी नहीं हैं। लेकिन अवधूतों के प्रति उनका सम्मान है।

अवधूत का अर्थ होता है : जिसने सब छोड़ा, जो त्यागी हो गया—परमहंस—घर-द्वार छोड़ा घर-द्वार ही छोड़ा—ऐसा ही नहीं, वर्ण-व्यवस्था छोड़ी, समाज छोड़ा, सभ्यता छोड़ी—ऐसा ही नहीं : संन्यास भी छोड़ा। अवधूत परमदशा है।

गृहस्थ से आदमी संन्यस्त बनता है, फिर संन्यस्त के भी पार हो जाता है। तो अवधूत।

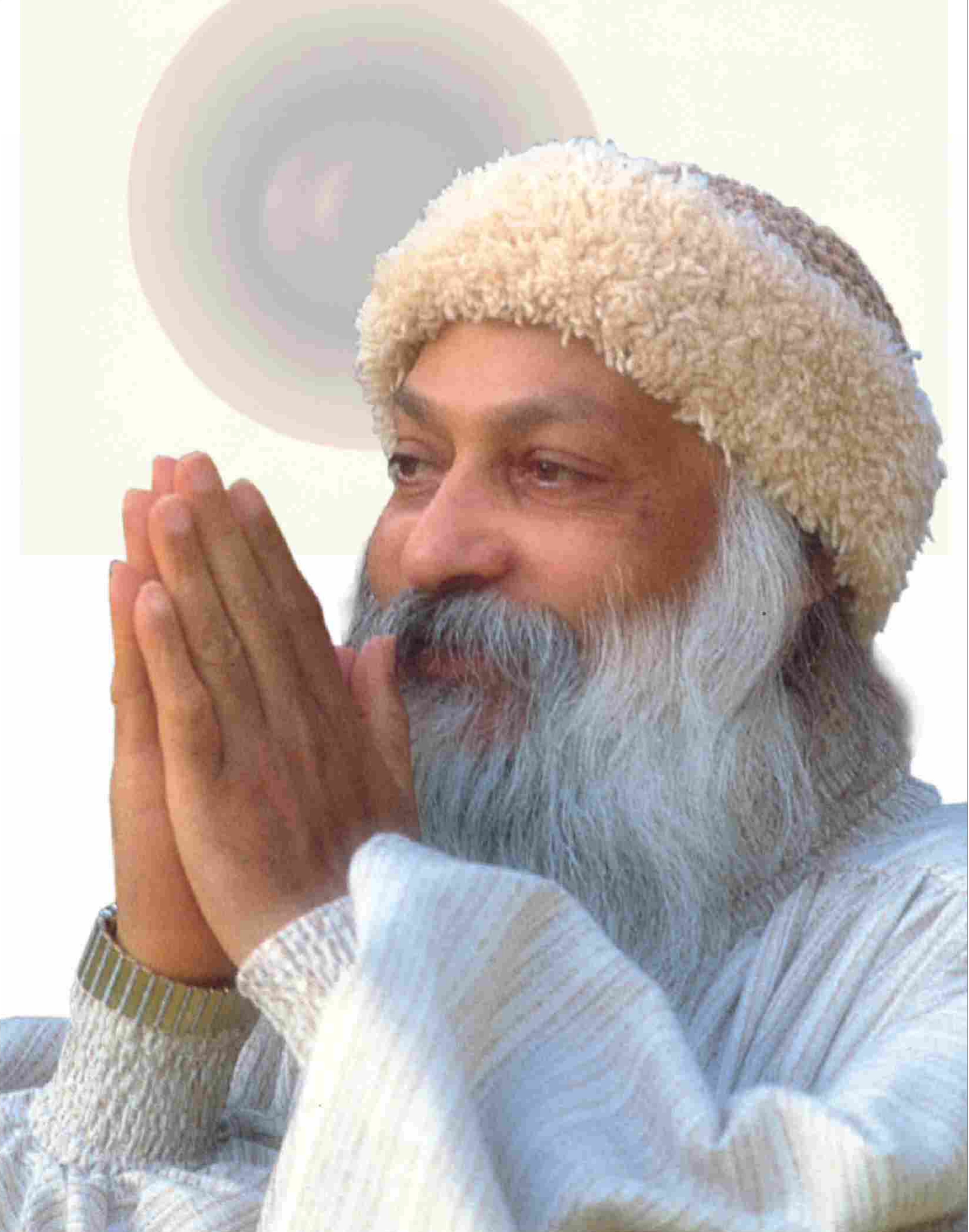

अवधू शब्द भी अच्छा है। इसका अर्थ है : 'वधू जाके न होई, सो अवधू कहावे।' जिसको दूसरे की जरूरत न रही; वधू यानी दूसरा। किसी को पत्नी की जरूरत है; किसी को मकान की जरूरत है; किसी को दुकान की जरूरत है; किसी को मित्र की जरूरत है; किसी को बेटे की, बेटी की; कोई न कोई जरूरत है। किसी को धन की, किसी को पद की।

जब तक दूसरे की जरूरत है, तब तक तुम अवधू नहीं। जो 'पर' से मुक्त हो गया, जिसको दूसरे की जरूरत न रही; जो अकेला काफी है; जो अपने में पूरा है; ऐसा सब छोड़ कर जो चला गया; संसार से बिलकुल विरक्त हो गया—परिपूर्ण—पीठ मोड़ ली, वह है : अवधू—अवधूत।

कबीर के मन में अवधूत का सम्मान है। लेकिन वे उनकी जीवन व्यवस्था से राजी नहीं हैं। क्योंकि कबीर कहते हैं : कहीं जाने की कोई जरूरत नहीं; यहीं हो सकता है। जो दौड़-दौड़कर, भाग-भागकर, जंगल-पहाड़ में करते हो, वह तो बाजार में हो सकता है। इतने दूर जाने की जरूरत क्या? परमात्मा दूर नहीं—पास है। परमात्मा तुम्हारे हृदय में विराजमान है।

कबीर कहते हैं : संसार छोड़ना, संसार में रहने से बड़ी बात है। लेकिन संसार में रहना और संसार को छोड़कर रहना, संसार छोड़ने से भी बड़ी बात है।

तो कबीर कहते हैं : अवधूत से भी ऊपर एक दशा है; और वह दशा है—जल में कमलवत्, संसार में होकर भी संसार को अपने में न होने देना। कबीर उसके पक्षपाती है।

लेकिन अवधूत के प्रति उनका सम्मान है। वे कहते हैं : कुछ तो किया; कुछ तो अपने को बदला; 'पर' से मुक्त हुआ। संसार से मुक्त हुआ। लेकिन कबीर कहते हैं कि संसार से मुक्त होने से भी बड़ी बात है : संसार में मुक्त होना। वह कबीर की संसार और परमात्मा के बीच संधि है; संसार और परमात्मा के बीच समन्वय है।

तो संसारी से बेहतर है त्यागी। लेकिन त्यागी से भी बेहतर है वह, जो संसार में है और संन्यस्त है।

यही मेरे संन्यास की धारणा भी है। तुम जहां हो, वहीं; जैसे हो वैसे ही; ठीक उसी दशा में तुम्हारे भीतर रूपांतरण हो जाए। क्योंकि रूपांतरण मनःस्थिति का है—परिस्थिति का नहीं।

अवधू का अर्थ है : परिस्थिति छोड़कर चला गया। सम्मान तो है, लेकिन कबीर की अपनी धारणा नहीं है वह।

इसलिए जहां वे अवधूत का उपयोग करें, वहां जानना कि बड़े सम्मान से बोल रहे हैं। खंडन नहीं करेंगे; स्वीकार है उन्हें अवधूत की दशा, लेकिन अपने शिष्यों को वे अवधूत होने के लिए नहीं कहते। वे और भी ऊपर ले जाते हैं।

और जहां कबीर कहें 'भाई' वहां समझना—वे साधारण जन को संबोधित कर रहे हैं। वह संबोधन भी प्यारा है। जब भी कबीर बोलते हैं : भाई, तब वे साधारण जन को संबोधित कर रहे है। लेकिन साधारण जन को वे 'भाई' संबोधित करते हैं।

जो परमदशा को प्राप्त हो गये हैं; वे जानते हैं कि तुम भी परमदशा को प्राप्त हो सकते हो। अगर नहीं प्राप्त हो रहे हो, तो तुमने ही बाधाएं बिठा रखी हैं।

जो परमदशा को प्राप्त होता है, वह यह भी देख लेता है कि यह तुम्हारी भी संभावना है। तुम बीज की तरह पड़े हो—यह बात दूसरी अन्यथा तुम से भी वसंत आ सकता है, बहार आ सकती है, फूल खिल सकते हैं।

तो कबीर जब सामान्य व्यक्ति को संबोधित करते हैं, तो बड़े प्रेम से कहते हैं—भाई।

सामान्य व्यक्ति के प्रति उनका बड़ा सद्भाव, बड़ा प्रेम, बड़ी करुणा है। तो जो वचन 'भाई' से शुरू हो, समझ लेना कि वह साधारण जन के लिए कहा गया है। साधारण सीधे लोग, न तो पंडित हैं, न पुरोहित हैं, न काजी हैं, न मुल्ला हैं; सीधे-सादे लोग; जीवन जैसा है, वैसा जीए जा रहे हैं। लेकिन अपनी संपदा से अपरिचित, उनको कहते हैं 'भाई'। उनको कहते हैं कि जो मुझे मिला है, वह तुझे मिल सकता है। मुझ में और तुझ में भेद नहीं है। हम एक ही परमात्मा की संतान हैं; इसलिए भाई। और हम एक ही संपत्ति के मालिक हैं—इसलिए भाई।

और कभी-कभी कबीर संबोधन करते हैं : जोगिया, जोगिड़ा, योगी, तो

अवधूत का अर्थ होता है : जिसने सब छोड़ा, जो त्यागी हो गया—परमहंस—घर-द्वार छोड़ा घर-द्वार ही छोड़ा—ऐसा ही नहीं, वर्ण-व्यवस्था छोड़ी, समाज छोड़ा, सभ्यता छोड़ी—ऐसा ही नहीं : संन्यास भी छोड़ा। अवधूत परमदशा है

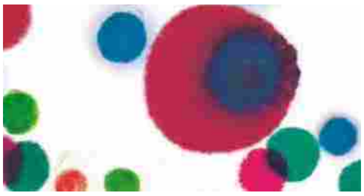

वे बड़े तिरस्कार से करते हैं। 'जोगिया' का अर्थ होता है, जो क्रियाकांड में उलझ गया; जो मूल तो चूक गया और असार को पकड़ लिया। कोई शीर्षासन लगाए खड़ा है; कोई कांटों पर लेटा है; कोई शरीर की कसरतें कर रहा है; इसको वे कहते हैं—योगिया, जोगिया।

असली योग तो भूल ही गया। असली योग तो अंतर्यात्रा है। और यह शरीर में ही उलझ गया। तो दिखाई तो पड़ता है : अध्यात्मवादी। लेकिन है पूरा शरीरवादी। इसकी सारी जीवन प्रक्रिया शरीर में उलझी है। नौली धौती कर रहा है; प्रक्षालन कर रहा है शरीर का। उपवास कर रहा है। ऐसा भोजन, वैसा भोजन। इस तरह बैठता, उस तरह खड़ा होता। चौबीस घंटे उलझा है। लगता है ऊपर से की बड़ी आत्मा की खोज में लगा है, लेकिन सारी खोज ऐसी लगती है—शरीर से बंधी।

कल एक मित्र ने प्रश्न पूछा था। प्रश्न था कि क्या रुग्ण व्यक्ति के जीवन में भी समाधि फलित हो सकती है? क्या बुद्ध पुरुष को कैंसर भी हो सकता है; क्षय रोग हो सकता है? पूछने वाले ने यह भी साथ में लिखा है कि जैन धर्म के मानने वाले कहते हैं कि देखो हमारे महावीर! कैसी सुंदर देह है! कैसी स्वस्थ देह है! कभी रोग न जाना। क्योंकि जब ज्ञान फलित होता है, तो देह भी रूपांतरित हो जाती है।

जैन तो कहते है कि महावीर मल-मूत्र विसर्जन नहीं करते। क्योंकि मल-मूत्र विसर्जन तो साधारण लोग करते हैं। देह रूपांतरित हो गई है!

जैन तो कहते हैं : महावीर को पसीना नहीं आता। पसीना तो साधारण जनों को आता है। जैन तो कहते हैं कि महावीर के शरीर से बड़ी सुगंध आती है; पसीने की तो बात ही दूर, दुर्गंध की तो बात ही दूर।

जैन तो यहां तक कहते हैं कि महावीर के शरीर में अब खून भी नहीं बहता; दूध बहता है।

तो जिसने प्रश्न पूछा है, उसने पूछा है कि क्या यह बात सच है कि क्या आत्मा के अवतरण पर देह भी सर्वांगरूपेण बदल जाती है?

नहीं; यह बात सच नहीं है।

रामकृष्ण को कैंसर हुआ। महर्षि रमण को कैंसर हुआ। और किसने तुमसे कहा कि महावीर को बीमारियां नहीं हुईं! महावीर मरने के पहले छः महीने बुरी तरह बीमार रहे। पेचिश की बीमारी से परेशान रहे। लेकिन जैनशास्त्र उसके लिए भी कोशिश करते हैं—छिपाने की। वे यह कहते हैं कि महावीर को बीमारी नहीं थी। यह तो महावीर का एक दुश्मन था—गौशालक—उसने महावीर पर क्रोध से भरकर तेजोलेश्या फेंकी; जादू किया। उसने जो क्रोध से भरी हुई अग्नि महावीर पर फेंकी थी—तेजोलेश्या की—उसको महावीर पचा गये। वे तो सभी पचा जाते हैं। उसको भी पचा गये। वही अग्नि उनके पेट को रुग्ण कर गई और उनको दस्त लगे, पेचिश की बीमारी रही। शरीर में उनके बीमारी नहीं थी।

यही मेरे संन्यास की धारणा भी है। तुम जहां हो, वहीं; जैसे हो वैसे ही; ठीक उसी दशा में तुम्हारे भीतर रूपांतरण हो जाए। क्योंकि रूपांतरण मनःस्थिति का है-परिस्थिति का नहीं

ये तो व्याख्याएं हैं। सो तो फिर कोई रामकृष्ण का भक्त कहता है कि किसी को कैंसर था, परमहंस ने वह ले लिया। किसी भक्त का कैंसर अपने ऊपर ले लिया। सो रमण का भक्त भी कह सकता है कि सारी दुनिया की तकलीफ उन्होंने ले ली। जैसे शिव ने जहर पी लिया और नीलकंठ हो गये, ऐसे रमण महर्षि के कंठ में कैंसर हो गया, क्योंकि सारे जगत की पीड़ा उन्होंने अपने ऊपर ले ली।

यह सब बकवास है। इसका कोई मूल्य नहीं है। लेकिन एक बात इसमें साफ है कि तथाकथित अध्यात्मवादी बड़े देहवादी, बड़े भूतवादी, बड़े पदार्थवादी हैं।

सच तो यह है कि देह तो रोग का घर है। देह यानी रोग। देह स्वस्थ रहती है, यह चमत्कार है। देह रुग्ण रहती है, यह स्वाभाविक है।

लेकिन हमारी पकड़ देहवादी की है। तो महावीर को अगर आत्मा का ज्ञान हुआ है, तो हम तत्क्षण देह में उनके लक्षण मांगना चाहते हैं—कि देह में लक्षण होने चाहिए। और फिर मूढ़तापूर्ण बातें भी हम कहते हैं कि खून दूध बन गया। अगर शरीर में दूध बहने लगे, तो आदमी सड़ जाएगा। क्योंकि दूध कभी भी दही बन जाएगा। दूध से आदमी जी नहीं सकता; खून अनिवार्य है।

और देह, तो जिन्होंने बुद्धत्व को पा लिया है उनकी, साधारण लोगों से ज्यादा जीर्ण-जर्जर हो जाती है। चूंकि उनका सारा लगाव छूट गया; देह में हैं—और नहीं हैं। देह से सारे संबंध छूट गए। देह से सब सेतू टूट गए। देह से बंधन क्या रहा? अब देह में प्राण अपने डालते ही नहीं। तो देह तो ऐसे घिसटने लगी—बोझरूप। अब तो पुराने कर्मों का संस्कार है, तब तक देह चलेगी और गिर जाएगी।

इसीलिए तो सद्गुरु या संबुद्धत्व को प्राप्त व्यक्ति फिर दुबारा जन्म नहीं लेता है, क्योंकि उसके देह को पैदा करने की क्षमता ही शांत हो गई। देह से लगाव गया, तो देह को जन्माने की क्षमता भी समाप्त हो जाती है।

तो परमज्ञान की अवस्था के बाद तो तुम घर में नहीं रहते, खंडहर में रहते हो। और चूंकि मालिक बिलकुल उदास हो गया, तटस्थ हो गया, कूटस्थ हो गया, अब घर की कौन फिक्र करता है! और घर तो आज नहीं कल गिरना है। घर गिरना शुरू हो जाता है।

लेकिन हमारी पकड़ बड़ी शारीरिक है। तो हम तो महावीर को ऐसा चित्रित करेंगे कि जैसे महावीर कोई गामा हों, कि दारासिंह हों। कुछ होश की बातें करो!

जोगिया का अर्थ होता है : चले तो थे आत्मा खोजने, उलझ गए शरीर में। चले तो थे यात्रा को, नक्शे में ही उलझ गए! नक्शे में ही बैठ रहे! सोचा था—परलोक जाएंगे, और इसी लोक की शुद्धि करने में लग गए और यहीं समाप्त हो गए

अगर यह सच है कि महावीर की देह परमज्ञान के कारण सर्वांगीण स्वस्थ हो गई, तो फिर जो लोग सर्वांगीण स्वस्थ हैं, उनको परमज्ञान हो जाएगा? फिर तो जंगल के पशु आसानी से बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाएंगे!

योगियों में भी यह धारा रही कि किसी तरह देह को स्वस्थ करो, लम्बाओ, उम्र बड़ी करो। अगर तुम्हें कोई योगी मिल जाए और दिखता हो कि है चालीस-पैंतालीस साल का और कहे कि डेढ़ सौ साल मेरी उम्र है, तब तुम चमत्कृत होते हो। तब तुम मान लेते कि हां, है कोई महान योगी।

तुम्हारी पकड़ शरीर को तौलती है। तुम्हारे सोचने का ढंग भौतिकवादी है। उसको कहते हैं कबीर—जोगिया; जो बातें तो अध्यात्म की करता है, लेकिन जिसकी पकड़ शरीर पर है। बातें तो बहुत ऊंचाई की करता है, लेकिन रहता बहुत नीचे तल पर है। शरीर में ही उलझा रहता है।

जैन मुनी करीब-करीब सब जोगिया हो गए हैं। शरीर की ही फिक्र में उलझे रहते हैं। ऐसा खाना, ऐसा पीना; ऐसा नहीं खाना, ऐसा नहीं पीना। आज उपवास।

यह, वह—यही चलता रहता है। कुछ और करने को जैसा है नहीं। ध्यान लगाने की तो फुरसत भी नहीं बचती। इस सब गोरख-धंधे से बचें, तो ध्यान लगे।

जानते हो 'गोरखधंधा' गोरखनाथ से आया है—शब्द गोरखधंधा। क्योंकि गोरखनाथ के शिष्यों ने बड़ा गोरखधंधा शुरू कर दिया था! बस उनका काम ही यह था—यह खाओ, यह पीओ; इस तरह आसन लगाओ; इस तरह कान छेदो। इस तरह सिर के बल खड़े हो जाओ। इतनी प्रक्रियाएं...! सब शरीर केंद्रित। उसको गोरखधंधा कहा जाने लगा।

जब कोई आदमी फिजूल की आपाधापी में पड़ा होता है, तो हम कहते हैं : क्या गोरखधंधे में पड़े हो? हमें याद भी नहीं कि गोरखनाथ जुड़े हैं उस गोरखधंधे में।

जोगिया का अर्थ होता है : चले तो थे आत्मा खोजने, उलझ गए शरीर में। चले तो थे यात्रा को, नक्शे में ही उलझ गए! नक्शे में ही बैठ रहे! सोचा था—परलोक जाएंगे, और इसी लोक की शुद्धि करने में लग गए और यहीं समाप्त हो गए।

तो जब कबीर 'जोगिया' कहें, तो समझ लेना कि वे मखौल उड़ा रहे हैं, वे मजाक उड़ा रहे हैं।

फिर कभी-कभी कबीर 'साधु' कहते—और कभी-कभी—संत। जब कबीर साधु कहते हैं या संत, तो अपने शिष्यों को संबोधन करते हैं।

साधु का अर्थ है : जो चल पड़ा संत होने की ओर। और संत का अर्थ है : जो पहुंच गया। तो जब अपने किसी पहुंचे हुए शिष्य को उद्‌बोधन करते हैं, तो संत कहते हैं। और जब अपने नए-नए शिष्यों को, जो प्रशिक्षित हो रहे हैं, जिन्होंने यात्रा की अभी पहल शुरू की, प्रस्थान किया है, उनको 'साधु' कहते हैं।

और कभी-कभी ऐसी भी बात कबीर कहते हैं, जब वे अपने को ही संबोधन करते हैं। जब कबीर अपने को संबोधन करते हैं, तब वे बड़ी अपूर्व बात कहते हैं। तब वे यह कहते हैं कि यह बात कुछ ऐसी है कि एक बुद्ध दूसरे बुद्ध से कहे। यह बात किसी और से नहीं कही जा सकती। अब कोई दूसरा बुद्ध मौजूद नहीं, इसलिए कबीर-कबीर से ही कह लेते हैं।

ध्यान रखना कबीर क्या संबोधन करते हैं, उस पर बहुत कुछ निर्भर करेगा।

— ओशो
कहै कबीर मैं पूरा पाया
तेरहवां प्रवचन
(पूरा प्रवचन टेप पर भी उपलब्ध है)